Vishnu Mahimna Stotra

विष्णुमहिम्नः स्तोत्रम्

Document Information

Text title : viShNumahimnastotram 2

File name : viShNumahimnastotram2.itx

Category : vishhnu, stotra

Location : doc_vishhnu

Author : shivasharmmasUrivirachitam

Proofread by : Ruma Dewan

Latest update : June 6, 2022

Send corrections to : sanskrit@cheerful.com

This text is prepared by volunteers and is to be used for personal study and research. The file is not to be copied or reposted without permission, for promotion of any website or individuals or for commercial purpose.

Please help to maintain respect for volunteer spirit.

Please note that proofreading is done using Devanagari version and other language/scripts are generated using **sanscript**.

June 23, 2023

sanskritdocuments.org

विष्णुमहिम्नः स्तोत्रम्

॥ श्रीः ॥

श्रीमहागणाधिपतये नमः ।
अथ शिवशर्म्मसूरिविरचितम् विष्णुमहिम्नः स्तोत्रम् ।
नत्वा रामं गुणग्रामं करुणावरुणालयम् ।
क्रियते विमला टीका तया रामः प्रसीदतु ॥

शिवशर्मसूरि-विरचित विष्णुमहिम्नः स्तोत्र,
"विमला भाषानुवाद" सहित, प्रारम्भ किया जाता है ॥

महिम्नः पारं तेऽनधिगतमनन्तश्रुतिगिरा-
मतोऽहं त्वां विष्णो कथमिह धिनोम्याश्रितगते ।
इदानीं मे स्वामिन् हृदयकमलस्थो निजमहो
मदीयं संश्रोतुं विशदमिह चेतः कुरु हरे ॥ १॥

अन्वय - हे विष्णो ! हे आश्रितगते ! अनन्तश्रुतिगिरां ते महिम्नः पारं अनधिगतं अतः त्वां इह कथं धिनोमि । हे स्वामिन ! हे हरे ! मे हृदय-कमलस्थः निजमहः संश्रोतुं मदीयं चेतः इदानीं विशदं कुरु ॥ १॥

अर्थ - विष्णो (व्यापकं) ! जब अनन्त श्रुतियाँ भी आपकी अपार महिमा का पार न पा सकीं तब भला मैं उसका वर्णन किस प्रकार कर सकता हूँ ? अतः स्वमिन् ! हरे ! आप मेरे हृदय-कमल में आसीन होकर अपने तेज (महिमा) को सुनने के लिये मेरे चित्त को निर्मल करें ॥ १॥

वसन्ते वासन्तः पिकमपि च कालः स्फुटयति
तथा श्रीकंसारे मुखरयति मां ते गुणगणः ।
अतो वै ते कीर्तिं वयमिह भणामः शृततरां
विहङ्गानां लाके मुदयति हि शास्तृन् कलवचः ॥ २॥

अन्वय - वासन्तः कालः वसन्ते पिकमपि स्फुटयति हे श्रीकंसारे ! तथा

ते गुणगणः मां मुखरयति । अतः ते शृततरां कीर्तिं वै वयं इह भणामः विहङ्गानां कलवचः लोके शास्तृन् हि मुदयति ॥ २॥

अर्थ - भगवन् ! श्रीकंसारे ! जिस प्रकार वसन्त ऋतु मौनधारिणी कोयल को कुहू कुहू करने के लिये प्रेरित करती है उसी प्रकार आपके अनन्त गुण आपकी महिमा वर्णन करने के लिये हमको मुखरित कर रहे हैं, अतएव हम भी आपकी अपार महिमा के वर्णन का प्रयत्न करते हैं । हम समझते हैं कि हमारा यह महिमा-वर्णन आपको अवश्यमेव रुचिकर होगा; क्योङ्कि कोयल आदि पक्षियों के पालनेवालों को उनकी सुमधुर ध्वनि सुनकर प्रसन्नता होती ही है ॥ २॥

पुरा त्वन्नाभ्यब्जोद्भवमपि भवान् मध्यकमले
विचिन्वन्तं सन्तं हृदयकमलेऽप्येकजलधौ ।
स्वतातं नाथ त्वां विविधजगतामुद्भवकृते
तपेत्यूचे तद्वन्मम दिशतु बुद्धिं स्तुतिकरीम् ॥ ३॥

अन्वय - पुरा एकजलधौ अपि मध्यकमले हृदयकमले सन्तं स्वतातं त्वां विचिन्वन्तं त्वन्नाभ्यब्जोद्भवमपि विविधजगतामुद्भवकृते भवान् तप इति यद्वत् ऊचे तद्वत् स्तुतिकरीं बुद्धिं ममं दिशतु ॥ ३॥

अर्थ - प्रभो ! एक समय यह समस्त सम्मार प्रलयकालीन महासागर की अथाह जल-राशि में मग्न था तब हृदय-कमल में विराजमान होने पर भी पिता-स्वरूप आपके अन्वेषण में तत्पर ब्रह्माजी को ब्रह्माण्ड-रचना करने के लिये जिस प्रकार आपने तप करने का आदेश दिया था उसी प्रकार आप अपनी स्तुति करने के उपयुक्त बुद्धि मुझे भी दीजिए ॥ ३॥

यदि स्वामिस्वामिन्नखिलभुवनानि स्वमनसा
विलीनानि स्वस्मिन्न कलयसि दृष्ट्या प्रभवितुम् ।
तदा नालं शेषिन्स्थितिगमनमुख्याः कुत इमे
न तच्चित्रं चैतत्त्वयि तु निजवात्सल्यकरणम् ॥ ४॥

अन्वय - हे स्वामिस्वामिन् ! यदि अखिलभुवनानि स्वमनसा स्वस्मिन् विलीनानि दृष्ट्या प्रभवितुं न कलयसि तदा हे शेषिन् स्थितिगमनमुख्याः इमे कुतः न अलम् । तत् एतत् त्वयि न चित्रं किन्तु निजवात्सल्यकरणम् ॥ ४॥

अर्थ - भगवन् ! आप प्रभुओं के भी प्रभु हैं अतः आप ही यदि अपने

में विलीन लोक-लोकान्तरों की उत्पत्ति का, अपनी कृपामयी दृष्टि द्वारा, विचार न करते तो अविनाशी स्वामिन् ! ये स्थावर-जङ्गम लोक-लोकान्तर कब उत्पन्न हो सकते ? इन सबको उत्पन्न करना आपके लिये कोई आश्चर्य की बात नहीम् । ऐसा करना तो जीवों पर अपनी दया दर्शाना है ॥ ४॥

त्वदुत्पन्ना वेदाः स्मृतिसकलविद्यादिसहिता-
स्तथा सर्वे देवाः करणविषयाश्चात्मनिवहाः ।
त्वया पाल्या नित्त्यं पुनरपि समेष्यन्ति भवति
विभो नित्ये शुद्धे चिदचिदनुविष्टेऽघरहिते ॥ ५॥

अन्वय - स्मृतिसकलविद्यादिसहिताः वेदाः त्वदुत्पन्नाः तथा सर्वे देवाः करणविषयाः आत्मनिवहाश्च त्वदुत्पन्नाः नित्त्यं त्वया पाल्याः पुनरपि हे विभो नित्ये शुद्धे चिदचिदनुविष्टे अघरहिते भवति समेष्यन्ति ॥ ५॥

अर्थ - विभो ! स्मृतियों एवं समस्त विद्याओं के सहित वेद जिस प्रकार आपसे उत्पन्न हुए हैं उसी प्रकार सम्पूर्ण देवता, इन्द्रियाँ, शब्द आदि विषय और निखिल जीव भी आपसे ही उत्पन्न हुए हैं और वर्तमान समय में आपके ही द्वारा सर्वदा पालनीय हैं तथा ये सब अन्त में नित्य, चिदचिद्रूप, शुद्ध, निष्पाप आपमें ही विलीन हो जायेङ्गे ॥ ५॥

गुरोः पापात्कोऽन्यो दनुजदमनान्मोचनपटु-
स्तथा वेदानां चापहृतिजनिताच्छोकजलधेः ।
विधातारं त्वत्तः पशुपतिमथो वा सुखयति
हरे श्रीरङ्गेश ह्यभिमतफलानां बहुवरैः ॥ ६॥

अन्वय - दनुजदमनात् गुरोः पापात् मोचनपटुः त्वत्तः अन्यः कः, तथा वेदानां च अपहृतिजनितात् शोकजलधेः मोचनपटुः त्वत्तः अन्यः कः, , विधातारं अथो वा पशुपतिं हे हरे! हे श्रीरङ्गेश! अभिमतफलानां बहुवरैः हि कः सुखयति ॥ ६॥

अर्थ - हरे ! श्रीरङ्गेश ! दानवों के दमन-रूपी महापाप से और वेदों के अपहरण द्वारा उत्पन्न शोक-सागर से उद्धार करने में आपके अतिरिक्त अन्य कौन समर्थ हो सकता है ? ब्रह्मा एवं शिवजी को भी अभीष्ट फलों की प्राप्ति के अनेक वरदान देकर आप ही आनन्दित करते हैं ॥ ६॥

इद विश्वं कस्योदरविचरमध्ये लयमगात्
स्थितौ को वा पाति ह्यजनि विधिना नाभिकमलात् ।

पुनः क्रान्त्वा विष्णो गिलति च सलीलं नरहरे
तदेवम्भूतस्त्वं निरतिशयभूतिर्मधुरिपो ॥ ७॥

अन्वय - हे विष्णो! इदं विश्वं कस्य उदरविवरमध्ये लयं अगात्, को वा स्थितौ पाति, कस्य नाभिकमलात् हि विधिना अजनि हे नरहरे ! पुनः क्रान्त्वा सलीलं गिलति च हे मधुरिपो ! तत् एवम्भूतः त्वं निरतिशयभूतिः असि ॥ ७॥

अर्थ - विष्णो! यह विशाल विश्व महाप्रलय के समय आपके ही अनन्त उदर-विवर में समा गया था, और स्थिति-काल में आप ही इसकी रक्षा करते हैं । ब्रह्माजी भी आपके ही नाभि-कमल से उत्पन्न हुए हैं । नरहरे ! ही अपनी शक्ति द्वारा पुनः इसका लीला-पूर्वक अपने अन्दर लय कर लेते हैं । मधुरिपो ! यह सब आपकी ही अपार महिमा है ॥ ७॥

न चान्यस्त्वद्देवोऽभयवरदमुद्राकरधरो
भवानेवैकोऽस्ति प्रकटितवराभीत्यभिनयः ।
शरण्य त्वत्पादौ फलमपि निजेच्छासमधिकं
भयात्पातुं दातुं सकलजगतामेव कुशलौ ॥ ८॥

अन्वय - अभयवरदमुद्राकरधरः देवः त्वत् अन्यः न च प्रकटितवराभीत्य- भिनयः भवान् एव एकः अस्ति, हे शरण्य ! त्वत्पादौ सकलजगतां एव निजे- च्छासमधिकं फलं अपि दातुं भयात् पातुं कुशलौ ॥ ८॥

अर्थ - सर्वरक्षक ! प्रभो! आपके चरण-कमल ही सकल संसार-समस्त प्राणियों के आकांक्षित से अधिक फल देने तथा भय से रक्षा करने में समर्थ हैं । अन्य देवता में यह शक्ति कहाँ ? ॥ ८॥

भवं त्वत्तः कोऽन्योऽवति निजकृते दुःखजलधौ
निमग्नं भूतात्मन् शकुनिजतिमिग्रासजभयम् ।
भ्रमित्वा ब्रह्माण्डेऽनधिगतशरण्यं परम ते
पदद्वीपोपान्ते स्वकृतबटुनावा निपतितम् ॥ ९॥

अन्वय - हे परम ! हे भूतात्मन् ! निजकृते दुःखजलधौ निमग्न शकुनि-जतिमिग्रासजभयं ब्रह्माण्डे भ्रमित्वा अनधिगतशरण्यं ते पदद्वीपोपान्ते स्वकृत- वटुनावा निपतितं भवं त्वत्तः अन्यः कः अवति ॥ ९॥

अर्थ - सर्वश्रेष्ठ ! अखिलप्राणिमय ! अपने कर्मों से रचित दुःख-रूपी सागर में निमग्न, शकुनि तथा तिमि नामक मत्स्य के ग्रास से उत्पन्न भय से अत्यन्त त्रस्त और ब्रह्माण्ड भर में भ्रमण करने पर भी शरण न पाकर अपनी कर्म-रूपी छोटी नौका द्वारा आपके चरण-रूपी द्वीप के समीप में पतित, संसार की आपके सिवा अन्य कौन रक्षा कर सकता है ? ॥ ९॥

अजां मार्कण्डेयाय ह तव कथं द्रष्टुमनसे
ह्यकाण्डे ब्रह्माण्डक्षयमथ विना त्वां प्रकटयेत् ।
पुमानन्यः स्वस्मिन्स्वयुतमनु विश्वं पुनरिदं
पृथिव्या ग्रीवायां कृतवटपलाशैकशयने ॥ १०॥

अन्वय - तव अजां द्रष्टुमनसे मार्कण्डेयाय ह अकाण्डे हि ब्रह्माण्डक्षयं त्वां विना अन्यः पुमान् स्वस्मिन् स्वयुतं इदं पुनः विश्वं अनु पृथिव्याः ग्रीवायां कृतवटपलाशैकशयने अथ कथं प्रकटयेत् ॥ १०॥

अर्थ - आपकी माया के देखने के लिये अत्यन्त इच्छुक महर्षि मार्कण्डेयजी को अकस्मात् (प्रलय का समय न होने पर भी) प्रलय कर दिखाने और वटपर्ण- मयी शय्या पर लेटकर अपने ही स्वरूप में निज महिमामय इस विश्व की रचना करने को इस भूमण्डल पर आपके सिवा अन्य कौन समर्थ हो सकता ? ॥ १०॥

वदान्यः कारुण्यो गुणगणविशिष्टः शुचिरपि
स्थिरः शान्तो दान्तो मृदुरसि दयावानृजुतमः ।
कृती शीली क्षान्तो बलभगसमेतः प्रणतिमां-
स्तपस्वी सन्तोषी त्वमसि न हि चान्योऽस्ति जगति ॥ ११॥

अन्वय - वदान्यः कारुण्यः गुणगणविशिष्टः अपि शुचिः स्थिरः शान्तः दान्तः मृदुः ऋजुसमः दयावान् त्वं असि तथा कृती शीली क्षान्तः बलभगसमेतः प्रणतिमान् तपस्वी सन्तोषी च त्वं असि जगति अन्यः न हि अस्ति ॥ ११॥

अर्थ - दाता, करुणामय, गुण-गणों से युक्त, शुचि, स्थिर, शान्त, दान्त, सरल, समदर्शी, कोमल और दयालु आप ही हैं । संसार में कुशल, शील- वान्, क्षमावान्, बल तथा ऐश्वर्य से युक्त, विनम्र, तपस्वी एवं सन्तोषी आप ही हैं । आपके सिवा अन्य कोई नहीं है ॥ ११॥

तनीयांसं विष्णो तव चरणपङ्केरुहभवं
विधिः पांशुं चिन्वन्सृजति विमलात्मा त्रिभुवनम् ।
दधात्येनं शेषः कथमपि सहस्रेण शिरसां
हवांस्तस्मिँल्लीलाःकृतविविधरूपो वितनुते ॥ १२॥ भवान्तस्मिन्नल्लीलाः ??

अन्वय - हे विष्णो ! विधिः तव चरणपङ्केरुहभवं तनीयांसं पांशुं चिन्वन् विमलात्मा सन् त्रिभुवनं सृजति शेषः शिरसां सहस्रेण एनं कथं अपि दधाति तस्मिन् कृतविविधरूपो भवान् लीलाः वितनुते ॥ १२॥

अर्थ - विष्णो ! ब्रह्माजी आपके चरण-कमलों की प्रति स्वल्प धूलि द्वारा अपनी आत्मा को शुद्ध करके जिस त्रिलोकी की रचना करते तथा शेषजी अपने हजारों सिरों पर जिसको अति कठिनता से धारण करते हैं, उसी त्रिलोकी में आप भी विविध रूप धारण करके अनेक लीलाएँ किया करते हैं ॥ १२॥

हरस्त्वामाराध्य प्रणतजनसंरक्षणपरं
पपौ क्ष्वेडं पीयूषमिव सकलं मोघरहितम् ।
सुधायाश्चाप्यन्ये विधिहरिहयाद्याः सुमनसो
विपद्यन्ते लोके जनक तव भक्तया विरहिताः ॥ १३॥

अन्वय - हरः प्रणतजनसंरक्षणपरं त्वां आराध्य मोघरहितं सकलं क्ष्वेडं पीयूषमिव पपौ, हे जनक ! अन्ये तव भक्तया विरहिता विधिहरिहयाद्याः सुमनसः सुधायाः च अपि लोके विपद्यन्ते ॥ १३॥

अर्थ - विनम्र जनों की रक्षा में तत्पर आपकी आराधना करके शिवजी ने, कभी विफल न होनेवाले, सम्पूर्ण विष को अमृत के समान पी लिया था । जनक ! आपकी भक्ति से विमुख होकर ब्रह्मा, इन्द्र आदि अन्य देवगण इस संसार में सुधा पीकर भी मृत्यु से नहीं बच सकते ॥ १३॥

जरासन्धारुद्धं धरणिपतिचक्रं स्वशरणे
जुगोपाद्यो यो मागवतु सृतिभीतेरधिगतम् ।
स देवः कालात्मा प्रकटितमहाभीमवपुषा
तमोमग्नं दैवाद्दलितनिजभक्तार्त्तिजनकः ॥ १४॥

अन्वय - आद्यः यः स्वशरणे जरासन्धांरुद्धं धरणिपतिचक्रं जुगोप, प्रक- टितमहाभीमवपुषा कालात्मा दलितनिजभक्तार्त्तिजनकः स देवः

दैवात् तमोमग्नं सृतिभीतेरधिगतं मां अवतु ॥ १४॥

अर्थ - आद्य पुरुष ! जरासन्ध ने जिस समय अपने यहाँ अनेक राजाओं को बन्दी बना रक्खा था उस समय आपने ही उनको जरासन्ध के कारागार से मुक्त करके उनकी प्राण-रक्षा की थी । आप ही महाभयङ्कर शरीर धारण द्वारा काल- रूप होकर भक्त-उत्पीड़क दुष्ट मनुष्यों का नाश किया करते हैं, अतः दुर्दैववश, अज्ञान के अन्धेरे में भटक रहे मुझ शरणागत की भी रक्षा कीजिए ॥ १४॥

यदृद्धिं लौकेशीमपि भुवनचूडामिणतया
स्थितां चक्रेऽधस्ताद्वरद स च राजन्यतनयः ।
न तस्मिंस्तच्चित्रं स्थितवति भवत्पादकमले
न कस्याप्याधिक्यं भवति शिरसस्त्वय्यवनतेः ॥ १५॥

अन्वय - हे वरद ! स च राजन्यतनयः भुवनचूडामणितया स्थितां लोकेशीं अपि ऋद्धिं यत् अघस्तात् चक्रे, तत् भवत्पादकमले स्थितवति तस्मिन् न चित्रं त्वयि शिरसः अवनतेः कस्यापि आधिक्यं न भवति ॥ १५॥

अर्थ - अभीष्ट फलों के दाता भगवन् ! अम्बरीष आदि राजकुमारों ने इन्द्र प्रभृति लोकपालों की लोकोत्तर विभूतियों को यदि आपकी भक्ति की अपेक्षा तुच्छ समझा तो यह उनके लिये कोई बड़ए आश्चर्य की बात नहीं; क्योङ्कि आपकी भक्ति ही तो सर्वोत्तम है ॥ १५॥

पुरा दग्धाङ्गोऽपि क्रतुहरतृतीयाक्षिदहनात्
त्वदीक्षालब्धात्मा मलयपवनायोधनरथः ।
द्विरेफज्यः पुष्पायुधविशिखबाणो मधुसख-
स्स्मरः सर्व विश्वं तव चरणसङ्गाद्विजयते ॥ १६॥

अन्वय - क्रतुहरतृतीयाक्षिदहनात् पुरा दग्धोऽपि त्वदीक्षालब्धात्मा मलयपवनायोधनरथः द्विरेफज्यः पुष्पायुधविशिखबाणः मधुसखः स्मरः तव चरण- सङ्गात् सर्व विश्वं विजयते ॥ १६॥

अर्थ - जो कामदेव किसी समय भगवान् शङ्कर के तृतीय नेत्र की आग में जलकर भस्म हो चुका था वही इस समय आपकी कृपा द्वारा संसार में पुनः जन्म लेकर मलयपवन-रूपी शस्त्रयुक्त रथ, भ्रमरमयी प्रत्यञ्चा, पुष्प-निर्मित धनुष और शिखायुक्त बाणों से सुसज्जित हो अपने सखा वसन्त की सहायता से संसार पर विजय प्राप्त कर रहा

है ॥ १६॥

हरं त्वत्सौन्दर्य्यप्रलयजलधेः पूरपतितं
स्मरग्राहग्रस्तं स्मृतिहरतरङ्गाकुलववम् ।
हरे दृष्ट्वा पूर्वं जितमदनमप्याशु कृपया
त्वमेवं पासि स्म स्वजनमदमत्तद्विपहरिः ॥ १७॥

अन्वय - हे हरे ! पूर्वं जितमदनमपि त्वत्सौन्दर्यप्रलयजलधेः पूरपतितं स्मरग्राहग्रस्तं स्मृतिहरतरङ्गाकुलववं हरं दृष्ट्वा स्वजनमदमत्तद्विपहरिः त्वं एवं कृपया आशु पासि स्म ॥ १७॥

अर्थ - जिस समय कामदेव-विजयी महादेवजी आपके सौन्दर्य-रूपी प्रलय- पयोधि के प्रवाह में पड़कर कामदेव-रूप ग्राह (मगर) से ग्रस्त हो अपनी स्मृति खो बैठे थे उस समय उनको व्याकुल देखकर भक्तमदनाशक आपने ही उनकी रक्षा की थी ॥ १७॥

(एक समय विष्णु भगवान् ने मोहनी रूप धारण किया था । उस समय उनके असीम सौन्दर्य को देखकर शिवजी भी मोहित हो गये थे । ंअकी कथा यों है कि भस्मासुर ने प्रबल तप के द्वारा प्रसन्न भगवान् शङ्कर से "जिसके सिर पर हाथ रक्खूँ वह भस्म हो जाय," ऐसा वरदान प्राप्त कर लिया । फिर वह पार्वतीजी को हरने के लिये शिवजी के सिर पर ही हाथ रखने को दौड़ा, तब व्याकुल होकर भागते हुए शिवजी ने विष्णु भगवान् का स्मरण किया । भक्तवत्सल भगवान् ने मोहनी रूप धारण कर भस्मासुर को मोहित करके, अपने सिर तथा कटि पर हाथ रखकर नाचने के लिये, उससे कहा । उसके ऐसा करते ही भगवान् ने उसको भस्म कर दिया और शिवजी की रक्षा की तथा विश्व-मोहनी रूप से वश में करके उनके काम-विजय के अभिमान को विध्वंस किया ।)

हरे विष्णो दासे मयि तव सुदृष्टिं वितरता-
दितीच्छन्स्तोतुं त्वां हर इति वदेद्यस्तु मनुजः ।
ददासि त्वं तस्मै विधिहरसुरेशानधिगतं
तदैव स्वात्मानं परमदिवि संस्थैरधिगतम् ॥ १८॥

अन्वय - हे हरे ! हे विष्णो ! मयि दासे तव सुदृष्टिं वितरतात् इति इच्छन् यस्तु मनुजः त्वां स्तोतुं हर इति वदेत् तस्मै

विधिहरसुरेशानधिगतं त्वं ददासि परमदिवि संस्थैरधिगतं
स्वात्मानं तदैव त्वं ददासि ॥ १८॥

अर्थ - -हरे ! मनुष्य आपकी स्तुति का इच्छुक होकर यदि आपके "हर" नाम का उच्चारण कर ले तो आप उसके सामने तत्क्षण अपने उस पारमार्थिक रूप को अभिव्यक्त कर देते हैं जिसकी प्राप्ति ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्र भी नहीं कर पाते और जिसे उत्तमलोक-निवासी केवल हिरण्यगर्भ आदि ही प्राप्त कर सकते हैं । अतः विष्णो ! मुझ दास पर भी अपनी कल्याणमयी दृष्टि कीजिए ॥ १८॥

इदं विश्वं देव प्रलयमुदयं चैति भवतो
निमेषोन्मेषाभ्यामनिमिषमहेन्द्राधिपपते ।
इति प्राहुः प्राच्याः परिहृतनिमेषे तव दृशौ
लयात् त्रातुं शङ्केजगदिदमशेषं दनुजधक् ॥ १९॥

अन्वय - हे देव ! हे अनिमिषमहेन्द्राधिपपते भवतः निमेषोन्मेषाभ्यां इदं विश्वं प्रलयं उदयं चैति, हे दनुजधक् ! इदं अशेषं जगत् लयात् त्रातुं तव परिहृतनिमेषे दृशौ प्राच्याः प्राहुः इति अहं शङ्के ॥ १९॥

अर्थ - दानव-वंश -विनाशक हे देव ! आप इन्द्र प्रभृति लोकपालों के अधिपति हैं । आपकी पलक के न हिलने और हिलने से ही यह विशाल विश्व उत्पन्न एवं विनष्ट होता रहता है, ऐसा प्राचीन ऋषि-महर्षि कहते हैं । मालूम होता है कि समस्त विश्व को प्रलय से बचाने के लिये ही आप अपनी पलक नहीं गिरने देते ॥ १९॥

सुरज्येष्ठो नाशं व्रजति धनपोऽप्येति मरणं
सुसम्मीलत्यक्षणां विततिरपि चैन्द्री विशयना ।
हरोऽप्येतन्नाशं भजति रचयन्नात्मनिधनं
महासंसारेऽस्मिन् विहरति भवान् योगशयनः ॥ २०॥

अन्वय - सुरज्येष्ठो नाशं व्रजति धनपोऽपि मरणं एति अक्षणां ऐन्द्री विशयना विततिः अपि सुसम्मीलति; हरोऽपि आत्मनिधनं रचयन् एतन्नाशं भजति अस्मिन्महासंसारे योगशयनः भवान् विहरति ॥ २०॥

अर्थ - ब्रह्माजी और धनाधिपति कुबेर भी काल-कवलित हो जाते हैं । देवताओं के अधिपति इन्द्र के सदा निर्निमेष रहनेवाले हजार नेत्र भी

बन्द होने से नहीं बच पाते । इसी प्रकार शिवजी भी ब्रह्माण्ड का नाश करते करते अपना अस्तित्व खो बैठते हैं । इस महासंसार में केवल आप ही योगशय्यारूढ़ होकर सर्वदा विहार करते रहते हैं ॥ २०॥

पुरेन्द्राद्यैर्देवैर्महिषभयभीतैस्तु भगवन्
मुखाद्देवी जाता निजगरणसमेता रणमुखे ।
जघानेन्द्रारीन्द्रं धृतसकलशक्तिं मुररिपो
तथा शक्तिस्तोमास्तव निजमहिम्नो बहुतराः ॥ २१॥

अन्वय - हे भगवन् ! महिषभयभीतैः इन्द्राद्यैः देवैस्तु सह रणमुखे तवं मुखात् निजगणसमेता देवी पुरा जाता धृतसकलशक्तिं इन्द्रारीन्द्रं जघान, हे मुररिपो ! तव निजमहिम्नः बहुतराः शक्तिस्तोमा जाताः ॥ २१॥

अर्थ - भगवन् ! जिस समय इन्द्र आदि देवता महिषासुर से अत्यन्त भयभीत हो रहे थे उस समय उक्त देवताओं को साथ लेकर समरभूमि में अव- तीर्ण आपके मुख से, अपने गणों समेत, उत्पन्न हुई देवी ने आपकी शक्ति पाकर ही इन्द्र के असीम शक्तिशाली प्रबल शत्रु का संहार किया था । मुररिपो ! आपकी महिमा से (समय-समय पर) अनन्त शक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ है ॥ २१॥

गजास्यस्त्वामादौ परमतपसेजेऽखिलगुरुं
तदन्ते सम्पेदे हरगणपतित्वं स्फुटतरम् ।
तथा पूजामग्रे सुरपतिमुखानां नयनयो-
स्तवोन्नत्या विष्णो भवति हि विरश्चिस्तृणमपि ॥ २२॥

अन्वय - गजास्यः आदौ अखिलगुरुं त्वां परमतपसा ईजे, तदन्ते हरगण-पतित्वं स्फुटतरं सम्पेदे तथा सुरपतिमुखानां नयनयोः अग्रे पूजां सम्पेदे हे विष्णो ! तवोन्नत्या विरश्चिरपि तृणं भवति हि ॥ २२॥

अर्थ - विष्णो! गणेशजी ने अखिल-गुरु (सर्वश्रेष्ठ) समझकर आपकी ही सर्वप्रथम, परम तपस्या द्वारा, आराधना की थी इसी लिये उक्त पूजा के अनन्तर उनको शिवजी के गणों में अधिपति पद मिला और आपकी आराधना के कारण ही उन्हें सब देवताओं से पहले पूजा-प्राप्ति का गौरव प्राप्त हुआ । भगवन् ! आपकी उन्नति (भक्ति) के सामने ब्रह्मा प्रभृति देवता अत्यन्त तुच्छ हैं ॥ २२॥

भवत्पादाम्भोजोद्वहनमणिपीठस्य निकटे

स्थितानां देवानामजहरमुखानां चरणयोः ।
तव श्रीमत्पूजा भवति रचिताप्यादरतया
समिज्या सर्वेषां मुकुलितकराणामविरतम् ॥ २३॥

अन्वय - भवत्पादाम्भोजोद्वहनमणिपीठस्य निकटे स्थितानां अजहर-मुखानां देवानां तव चरणयोः आदरतयाऽपि रचिता श्रीमत्पूजा भवति, मुकुलित- कराणां सर्वेषां अविरतं समिज्या भवति ॥ २३॥

अर्थ - आपके पाद-पद्म को धारण करनेवाले मणिखचित पीठ के सन्निधि में खड़ए हुए ब्रह्मा, शिव आदि देवताओं की आदरपूर्वक की गई पूजा आपके चरणों में होती है, अर्थात् देवता भी आपके चरणों की ही पूजा करते हैं । और सब देवताओं की पूजा मुकुलित कर-कमलवाले होने से सदा सम्पन्न होती है ॥ २३॥

महन्क्षीराब्ध्यन्ते मणिविरचितद्वीपसुभगे
सुरावासानन्तारुहपरिवृते दिव्यभवने ।
फणीन्द्राख्ये पीठे स्थितमजयमायेऽखिलगुरो
स्मरन्ति त्वां धन्याः सततमतिलावण्यजलधिम् ॥ २४॥

अन्वय - हे अखिलगुरो ! हे महन् ! क्षीराब्ध्यन्ते मणिविरचितद्वीप-सुभगे सुरावासानन्तारुहपरिवृते दिव्यभवने अजयमाये फणीन्द्राख्ये पीठे स्थितं अतिलावण्यजलधिं त्वां धन्याः सततं स्मरन्ति ॥ २४॥

अर्थ - हे पूज्य ! हे अखिल के गुरु ! जो लोग क्षीर-समुद्र के निकट, मणि- रचित द्वीप, सुभग देवालय तथा अनेक वृक्षों से आवृत दिव्य भवन में विजय- रहित मायावाले फणीन्द्र नामक पीठ पर स्थित अतिशय शोभा के समुद्र आपका स्मरण करते हैं वे धन्य हैं ॥ २४॥

कवीनां प्रज्ञापङ्कजवननवीनद्युमणिभं
भजन्ति त्वा ये वै कतिचन महानन्तशयन ।
विधातुर्भार्यायास्तरुणतमशृङ्गारलहरी-
गभीराभिर्वाग्भिर्विदधति सतां ते सुखमहो ॥ २५॥

अन्वय - हे महानन्तशयन ! कवीनां प्रज्ञापङ्कजवननवीनद्युमणिभं त्वां ये वै कतिचन विधातुर्भार्यायाः तरुणतमशृङ्गारलहरीगभीराभिः वाग्भिः भजन्ति ते सतां सुखं अहो विदधति ॥ २५॥

अर्थ - हे महाशेष की शय्या पर शयन करनेवाले ! कवियों के प्रज्ञा-रूप कमल-वन के नवीन सूर्य की प्रभावाले ! आपको जो भक्तजन ब्रह्मा की पत्नी सरस्वती के प्रौढ़तम शृङ्गार की तरङ्गवाली गम्भीर वाणी द्वारा भजते हैं वे ही पुरुष सज्जनों के लिये सुख का विधान करते हैं । यह हर्ष है ॥ २५॥

भवन्सव्यान्नेत्राद्भवति दिवसोऽर्कात्मकतया ?
त्रियामा ते वामाद्भवति रजनीपालकतया ।
तयोर्मध्यात्सन्ध्या भवति गुणरूपा मधुपते
महात्मन्विश्वेशाखिलजगदुपादान भगवन् ॥ २६॥

अन्वय - हे मधुपते ! हे महात्मन् ! हे विश्वेश ! हे अखिल जगदुपादान ! हे भगवन् ! आकस्मिकतया भवत्सव्यान्नेत्रात् दिवसः भवति रजनीपालकतया ते वामान्नेत्रात् त्रियामा भवति तयोः मध्यात् गुणरूपा सन्ध्या भवति ॥ २६॥

अर्थ - हे मधुवन के ईश ! हे महात्मन् ! हे जगत् के प्रभु ! हे सम्पूर्ण जगत् के आदि-कारण ! हे भगवन् ! सूर्य-रूप होने के कारण आपके दाहिने नेत्र से दिन होता है । रात्रि-निर्माता चन्द्रमा-रूप होने के कारण आपके बाँयें नेत्र से रात्रि होती है । दोनों (दिन-रात्रि) के मध्य से रज-सत्त्व-तम-रूप सन्ध्या होती है ॥ २६॥

त्वमग्निस्त्वं व्योम त्वमसि पवनस्त्वं वसुमती
त्त्वमापस्त्वं सूर्यस्त्वमसि परमेष्ठी व्रजपते ।
मनस्त्वं रुद्रस्त्वं त्वमसि चिदचित्त्वं वयमिह
न विद्मस्तत्तत्त्वं न भवति भवान् यत्सकलदृक् ॥ २७॥

अन्वय - हे व्रजपते ! त्वं अग्निः त्वं व्योम त्वं पवनः असि, त्वं वसुमती त्वं आपः त्वं सूर्यः त्वं परमेष्ठी असि त्वं मनः त्वं रुद्रः त्वं चित् त्वं अचित् असि सकलदृक् भवान् यत् न भवति तत्तत्त्वं वयं इह न विद्मः ॥ २७॥

अर्थ - हे व्रजपते ! अनि, आकाश, पवन, पृथ्वी, जल, सूर्य, ब्रह्मा, मन, रुद्र, चेतन तथा अचेतन सब कुछ आप ही हैं । सम्पूर्ण वस्तुओं के साक्षात् करनेवाले आप जिस वस्तु के स्वरूप नहीं हैं, उस तत्त्व को हम सब इस जगत् में नहीं जानते हैं अर्थात् सम्पूर्ण वस्तु

के स्वरूप आप ही हैं ॥ २७॥

मदीयोऽयं जल्पो व्रजतु जपतां प्रक्रमरणतां
गतिर्मुद्राभावं सकलमपि शिल्पं हवनताम् ।
तथा मे भुक्त्याद्या प्रणतिमुपसंयातु शयनं
भवत्पूजारूपं भवतु सकलं मे विलसितम् ॥ २८॥

अन्वय - प्रयं मदीयः जल्पः जपतां व्रजतु गतिः, प्रक्रमणतां व्रजतु सकल- मपि शिल्पं मुद्राभावं व्रजतु तथा मे भुक्त्याद्या हवनतां व्रजन्तु शयनं प्रणतिं उपसंयातु सकलं मे विलसितं भवत्पूजारूपं भवतु ॥ २८॥

अर्थ - हे भगवन् ! मेरा भाषण जप-रूपता को, गति परिक्रमा-स्वरूपता को, सम्पूर्ण शिल्प भी मत्स्य-कूर्मादि मुद्रा-रूप को तथा मेरी भोजनादि क्रिया हवन-रूपता को और शयन प्रणाम के स्वरूप को प्राप्त हो; मेरा सम्पूर्ण विलास आपकी पूजा के रूप में परिणत हो ॥ २८॥

त्वदीये मज्जीवा भवतु चरणे पद्मसुभगे
षडङ्घ्रिर्भूतात्मन् करणचरणैर्हंसशरणे ।
ददत्त्यात्मानन्दं श्रियमनिशमाशानुसदृशीं
स्वराडर्थिभ्यो ज्ञाय च किरति मोक्षामृतरसम् ॥ २९॥

अन्वय - हे भूतात्मन् ! त्वदीये पद्मसुभगे हंसशरणे चरणे करणचरणैः षडङ्घ्रिः, मज्जीवो भवतु स्वराट् आनन्दं आशानुसदृशीं श्रियं अनिशं अर्थिभ्यो ददाति ज्ञाय च मोक्षामृतरसं किरति ॥ २९॥

अर्थ - हे सर्वप्राणियों के आत्मा-स्वरूप ! कमल के समान सुभग ! आत्माओं के शरण-चरण में मन के साथ छः ज्ञानेन्द्रिय-रूपी चरणों से भ्रमर होकर मेरा जीव होवे । स्वराट् (अपने प्रकाश से प्रकाशित) आत्मा आनन्दार्थी को आनन्द और अपने अभिलाष के सदृश श्री के अर्थी को लक्ष्मी देता है । ज्ञानी पुरुषों के लिये मोक्ष-रूपी अमृतरस बखेरता है ॥ २९॥

परव्यान्नि श्रीशं मणिरचितपुर्य्यां वरद म-
ण्डपे देवावासोद्भवतरुपरीते श्रुतिनुते ।
महानन्तोत्सङ्गे स्थितमतिमहानन्दजलधिं
श्रिया युक्तं भूम्यादिभिरपि भजे त्वादिपुरुषम् ॥ ३०॥

अन्वय - हे वरद ! परव्योम्नि मणिरचितपुर्य्यां देवावासोद्भवतरुपरीते श्रुतिनुते मण्डपे महानन्तोत्सङ्गे स्थितं अतिमहानन्दजलधिं श्रिया भूम्यादिभिरपि युक्तं श्रीशं आदिपुरुषं त्वां भजे ॥ ३०॥

अर्थ - हे वरद ! सर्वोत्तम धाम में मणि से बनी हुई पुरी के भीतर देवताओं के स्थानों में उत्पन्न वृक्षों से व्याप्त, वेद से स्तुति को प्राप्त मण्डप के अभ्यन्तर, महाशेष के अङ्क में बैठे हुए अत्यन्त महानन्द के समुद्र, लक्ष्मी तथा भूमि आदि से युक्त, लक्ष्मीपति, आदि-पुरुष आपको मैं भजता हूँ ॥ ३०॥

घनश्यामं देवं स्थिरचपलिकातुल्यवसनं
सितच्छत्रार्काढ्यं व्यजनपरिवर्त्तेन्दुयमलम् ।
सदा मुक्तैर्मुक्तप्रचयकुसुमश्रेण्युडुगणं
महामालाशक्रायुधयुगलमानन्दसलिलम् ॥ ३१॥

अन्वय - हे मधुपते ! घनश्यामं स्थिरचपलिकातुल्यवसनं सितच्छत्रार्काढ्यं व्यजनपरिवर्त्तेन्दुयमलं मुक्तैः मुक्तप्रचयकुसुम श्रेण्युडुगणं महामालाशक्रायुधयुगलं आनन्दसलिलं देवं कदा सदा द्रक्ष्यामि ॥ ३१॥

अर्थ - हे मधुपते ! मेघ के सदृश श्यामवर्णवाले, अचल विद्युत् के तुल्य वस्त्र से युक्त, श्वेतछत्र-रूपो सूर्य से सम्पन्न तथा व्यजन (चँवर) के डुलाने से मानों दो चन्द्रमाओं के समेत, मुक्त पुरुषों से परित्यक्त पुष्प-पुञ्जों के श्रेणी- रूप नक्षत्रगणवाले इन्द्र के दो धनुषों के समान महामाला (वनमाला) को धारण किये हुए आनन्दरूपी जलवाले देव को सदैव कब देखूँगा ? मेघपक्ष में - स्थिर मेघ-छटा में विद्युत् रूप उचित वस्त्रवाले सूर्य-रूपी श्वेत छत्र से आढ्य उडुगण-रूपी मुक्त पुरुषों से त्यक्त कुसुम-पुञ्ज की पङ्क्तिवाले इन्द्र- धनुष-रूपी महामाला को धारण किये हुए जल-रूपी आनन्दवाले श्याम मेघ को सदा कब देखूँगा ? ॥ ३१॥

क्वणत्पादाभूषामणिरचितकाञ्चीस्तनितकं
तदुत्पन्नानन्दोन्मुखरनिजनित्यप्लवगणम् ।
स्फुरन्युक्ताहारोढचलवकपङ्क्ति मधुपते

कदा द्रक्ष्यामि त्त्वा गलितमलसारङ्गमहकम् ॥ ३२॥

अन्वय - हे मधुपते! कणत्पादाभूषामणिरचितकाञ्चीस्तनितकं तदुत्पन्ना- नन्दोन्मुखरनिजनित्यप्लवगणं स्फुरन्मुक्ताहारोढचलवकपङ्क्तिं गलितमलसारङ्ग- महकं त्वा कदा द्रक्ष्यामि ॥ ३२॥

अर्थ - शब्दायमान चरण के अलङ्कार की मणि से रचित काञ्ची (कर्धनी) की गर्जनावाले, उस काञ्ची के शब्द से आविर्भूत आनन्द से अतिशय शब्द करते हुए अपने सनातन पक्षियों के सहित तथा देदीप्यमान मोतियों के हारों से व्याप्त उड़ती हुई वक-पङ्क्ति से युक्त शुद्धान्तःकरणवाले पक्षियों के उत्सव के साथ आपको किस समय सदा हम देखेङ्गे ? ॥ ३२॥

चतुर्बाहुं शान्तं सकृदुदितसूर्यायुतनिभं
महारत्नव्रातोज्ज्वलवलयकेयूरमुकुटम् ।
उरः श्रीवत्साङ्क स्मितशुभमुखं कुण्डलधरं
गदाशङ्खार्य्यब्जध्वजकमलचक्राङ्कितपदम् ॥ ३३॥

अन्वय - हे भगवन् ! चतुर्बाहुं शान्तं सकृदुदितसूर्यायुतनिभं महारत्नव्रा- तोज्ज्वलवलयकेयूरमुकुटं उरः श्रीवत्साङ्कं स्मितशुभमुखं कुण्डलधरं गदाशङ्खार्य- ब्जध्वजकमल चक्राङ्कितपदं त्वां अहं संसेवे ॥ ३३॥

अर्थ - हे भगवन् चतुर्भुज ! शान्त, एक बार उदय को प्राप्त दस हजार सूर्यों के सदृश तथा महारत्नों के समूह से देदीप्यमान कङ्कण-केयूर (बाजूबन्द) मुकुट को धारण करनेवाले, वक्षःस्थल में भृगुलता के चिह्न से चिह्नित और मुस- कराने से सुन्दर मुख तथा कुण्डल को पहने हुए गदा, शङ्ख, चक्र, कमल, ध्वज, कमल (मृग) इनके चक्र (समूह) से चिह्नित चरणवाले आपकी सेवा मैं भली भाँति करता हूँ ॥ ३३॥

("कमलस्तु मृगान्तरे" इस हैम-कोश से यहाँ कमल शब्द मृगविशेष-वाचक है -पद्म का नहीम् । अन्यथा अब्ज के साथ पुनरुक्ति दोष आ जाता है ।)

प्रवालोष्ठं सुभ्रून्नसमलकसङ्घावृतमुखं
नवाङ्गुल्यङ्गुष्ठच्छदनविलसत्पादकमलम् ।

सुतुङ्गांसारस्कं पृथुकटितटश्रोणि सरसी-
रुहाक्षं संसेवे तनुदशनवत्कौस्तुभगलम् ॥ ३४॥

अन्वय - प्रवालोष्ठं सुभ्रून्नसं अलकसङ्घावृतमुखं नवाङ्गुल्यङ्गुष्ठच्छदन- विलसत्पादकमलं सुतुङ्गांसोरस्कं पृथुकटितटश्रोणि सरसीरुहाक्षं तनुदशनवत् कौस्तुभगलं त्वां अहं संसेवे ॥ ३४॥

अर्थ - प्रवाल के सदृश रक्त ओष्ठवाले, सुन्दर भौंहों तथा उन्नत नासिका से युक्त, केशों से आच्छादित मुखवाले, अँगुली अङ्गुष्ठ को ढाँकनेवाले, नवीन दुकूलादि वस्त्र से शोभित चरण-कमल को धारण किये हुए सुन्दर ऊँचे कन्धों और छाती से युक्त, स्थूल कटि (कमर) भाग और जङ्घाओं को धारण किये हुए, कमल के सदृश नेत्रोंवाले, छोटे-छोटे दाँतों से युक्त और ग्रीवा में कौस्तुभ मणि से विभूषित आपको भली भाँति सेवन करता हूँ ॥ ३४॥

विधत्ते यौ मूर्ध्ना निगमपुरुषस्ते हि चरणौ
ममाप्येतौ धत्ताच्छिरसि कृपया यादवपते ।
ययोः पाद्यं बिभ्रत्पशुपतिरसौ शीर्ष्णि सरजं
शिवत्वं सम्प्राप्तो जगति विपरीतोऽपि वपुषा ॥ ३५॥

अन्वय - हे यादवपते ! ते यौ चरणौ हि निगमपुरुषः मूर्ध्ना विधत्ते एतौ ममापि शिरसि कृपया धत्तात् ययोः सरजं पाद्यं शीर्ण बिभ्रत् असौ पशुपतिः वपुषा विपरीतोऽपि जगति शिवत्वं सम्प्राप्तः ॥ ३५॥

अर्थ - हे यादवपते ! वेद-पुरुष जिन आपके चरणों को शिर से धारण करते हैं उन चरणों को कृपा करके मेरे शिर पर संस्थापन करो । जिन चरणों के, धूलि के साथ, पादोदक को शिर पर धारण करते हुए पशुपति शरीर से अशिव- रूप भी संसार में शिवत्व (कल्याणरूपत्व) रूप को प्राप्त हुए ॥ ३५॥

कृतघ्नः क्षुद्रात्मा स्मरपरवशश्चञ्चलमति-
ऋर्शसोऽपर्य्यादःकृतबहुलपापः कथमहम् । ??
भवत्पादाम्भोजद्वयमधिपते दुःखजलधेः
समुत्तीर्णोऽपारादथ परिचरेयं च सततम् ॥ ३६॥

अन्वय - हे अधिपते ! कृतघ्नः क्षुद्रात्मा स्मरपरवशः चञ्चलमतिः

नृशंसः अमर्यादः कृतबहुलपापः अहं अपारात् दुःखजलधेः समुत्तीर्णः सन् कथं भवत्पादाम्भोजद्वयं अथ सततं च कथं परिचरेयमित्यन्वयः ॥ ३६॥

अर्थ - हे अधिपते ! कृतघ्न, क्षुद्रात्मा, काम के अधीन, चञ्चलबुद्धि, क्रूर, मर्यादारहित, बहुत से पापों को किये हुए मैं अपार दुःख-रूपी समुद्र से पार होने के पश्चात् आपके चरण-कमलों की सेवा सदा किस प्रकार करूँ ? ॥ ३६॥

न चेच्छामि स्वर्गं न च रसपतित्वं मम पते
न सिद्धीर्नो ध्रौव्यं न हि विधिपदं दीनकरुणम् ।
न पातालेशत्त्वं न च सकलगोत्राधिपतितां
न मुक्तिं त्वां त्यक्त्वा परमसुखसौभाग्यजलधिम् ॥ ३७॥

अन्वय - हे मम पते ! त्वां त्यक्त्वा न च स्वर्गं न च रसपतित्वं न सिद्धीः नो ध्रौव्यं नहि दीनकरुणं विधिपदं न पातालेशत्वं न च सकलगोत्राधि- पतितां न मुक्तिं न परमसुखसौभाग्यजलधिं इच्छामि ॥ ३७॥

अर्थ - हे मेरे स्वामिन् ! आपको छोड़कर मैं स्वर्ग और वरुणपद, सिद्धि, ध्रुवपद, दीनों के ऊपर दयावाले विधिपद तथा पाताल की प्रभुता को, सम्पूर्ण वंश में आधिपत्य को और मुक्ति-महानन्द के सौभाग्य-रूपी समुद्र को नहीं चाहता ॥ ३७॥

क्व ते ब्राह्मी लक्ष्मीस्त्रिगुणरहिता प्राकृतगुणा
क्व मे बुद्धिः स्वामिन् कुशपरिणतिः क्लेशसहिता ।
पुरेत्थं भीतं मां तव चरणयोर्भक्तिरदधद्
ध्यमन्दीकृत्या मे तनुवचनपुष्पोपहरणम् ॥ ३८॥

अन्वय - हे स्वामिन् ! त्रिगुणरहिता प्राकृतगुणा ते ब्राह्मी लक्ष्मीः क कृशपरिणतिः क्लेशसहिता मे बुद्धिः क इत्थं पुरा भीतं मां भक्तिः तव चरणयोः अदधत् हि मे तनुवचनपुष्पोपहरणं अमन्दीकृत्या भवति ॥ ३८॥

अर्थ - हे स्वामिन् ! कहाँ तो सत्त्व, रज, तम, इन गुणों से रहित स्वाभा- विक गुणवाली आपकी ब्राह्मी शोभा और कहाँ अत्यन्त कृश परिणामवाली क्लेश से समन्वित मेरी बुद्धि ? इन दोनों में बहुत अन्तर है-इस प्रकार से डरे हुए मुझको भक्ति ने आपके चरणों में निश्चय रख

लिया है । मेरे अल्प स्तुति के वचन-रूपी पुष्पों का उपहार (भेण्ट) ही अधिक पूजा-रूपी क्रिया है ॥ ३८॥

अनेक ब्रह्मायुर्यदि वरद शेषायुतसमो
रसज्ञातो बुद्धया शतसुरगणाचार्यसदृशः ।
भवेन्नावागात्मा तव गुणगणान्केशव पठेत्
सदा पारं नेयात्तदपि भवतो देव यशसाम् ॥ ३९॥

अन्वय - हे वरद ! हे देव ! हे केशव ! यदि अनेकब्रह्मायुः रसज्ञातः शेषायुतसमः बुद्धया शतसुरगणाचार्यसदृशः भवेत् अवागात्मा न भवेत् तव गुणगणान् यदपि सदा पठेत् तदपि भवतो यशसां पारं न इयात् ॥ ३९॥

अर्थ - हे वर देनेवाले ! हे देव ! हे केशव ! यदि किसी मनुष्य की कई ब्रह्माओं के समान आयु हो, हजार शेष के समान जिह्वा हो, सौ बृहस्पतियों के समान बुद्धि हो, और आत्मा अवाक् न हो, किन्तु वाणी-स्वरूप ही हो, ऐसे होते हुए कोई व्यक्ति यदि आपके गुणों को सदा पढ़ता ही रहे, तो भी आपके यश के पार को नहीं पहुँचता ॥ ३९॥

पठेद्यो वै विष्णोः स्तवमिममशेषाघहरणं
महिम्नो विप्रः स श्रुतिशिखरमम्याद्विजयभुक् ।
भवेद्राजन्यो विड् धनपशुयुतः स्याद् वृजिनतो
विमुक्तः स्याच्छूद्रो हरिपदमियात्कामिरहितः ॥ ४०॥

अन्वय - विष्णोः महिम्नः अशेषाघहरणं इमं स्तवं यो वै विप्रः पठेत् स श्रुतिशिखरं अभ्यात् राजन्यः विजयभुक् भवेत् विट् धनपशुयुतः स्यात् शूद्रः वृजिनतः विमुक्तः स्यात् कामरहितः हरिपदं इयात् ॥ ४०॥

अर्थ - विष्णु की महिमा के, सम्पूर्ण पापों को हरण करनेवाले, इस स्तोत्र को निश्चय करके जो ब्राह्मण पढ़ए वह श्रुतियों के शिखर को प्राप्त हो अर्थात् समस्त वेद का ज्ञाता हो, क्षत्रिय सङ्ग्राम में विजय का भागी हो । वैश्य धन और पशुओं से समन्वित हो तथा शूद्र पाप से विमुक्त हो । कोई भी पुरुष कामना-रहित होकर पढ़ए तो हरि-पद को प्राप्त हो ॥ ४०॥

स्तोत्रं विष्णुमहिम्नोऽदो भाषितं शम्भुशर्मणा ।
कृपया श्रीनिवासानां हरिभक्तिविनोदकृत् ॥ ४१॥

अन्वय - श्रीनिवासानां हरिभक्तिविनोदकृत् अदः विष्णुमहिम्नः स्तोत्रं शम्भुशर्मणा कृपया भाषितम् ॥ ४१ ॥

अर्थ - लक्ष्मीपात्रों को हरि-भक्ति में अनुरक्त करनेवाला यह विष्णु-महिमा का स्तोत्र, जनता के ऊपर कृपा करके, शिवशर्म्मा सूरि ने बनाया है ॥ ४१ ॥

इति श्रीमन्नारायणचरणारविन्दमधुपेन शिवशर्म्मरणा
कृतः विष्णुमहिम्नः स्तवः सम्पूर्णः ।
श्रीमन्नारायण के चरण-कमलों के भ्रमर (भक्त) शिवशर्म्मा सूरि
का बनाया हुआ यह "विष्णुमहिम्नः स्तोत्र" समाप्त हुआ ।

Rearranged and proofread by Ruma Dewan

Vishnu Mahimna Stotra
pdf was typeset on June 23, 2023

Please send corrections to *sanskrit@cheerful.com*